International Journal of Sanskrit Research 2018; 4(3): 16-18

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2018; 4(3): 16-18
© 2018 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 05-03-2018
Accepted: 06-04-2018

डॉ. वेद प्रकाश मिश्र
प्रोफेसर, संस्कृत विभागाध्यक्ष, डॉ.सी.वी.रामन् विश्वविद्यालय, करगी रोड कोटा, बिलासपुर, छत्तीसगढ़, भारत

संतोष कुमार शर्मा
पी–एच. डी. शोधछात्र, संस्कृत विभागाध्यक्ष, डॉ.सी.वी.रामन् विश्वविद्यालय, करगी रोड कोटा, बिलासपुर, छत्तीसगढ़, भारत

Correspondence
डॉ. वेद प्रकाश मिश्र
प्रोफेसर, संस्कृत विभागाध्यक्ष, डॉ.सी.वी.रामन् विश्वविद्यालय, करगी रोड कोटा, बिलासपुर, छत्तीसगढ़, भारत

श्रीमद्भागवत् कथा एवं भक्तितत्व

डॉ. वेद प्रकाश मिश्र, संतोष कुमार शर्मा

प्रस्तावना

भारत वर्ष के प्राचीन तथा परंपरागत, साधना प्रसूत एवं शास्त्रीय वैदिक, पौराणिक ज्ञानागार का अति समृद्ध मूल वस्तुतः वैदिक एवं आगमिक मंत्रो व सूक्तों में उपलब्ध होता हैं। पाश्चाद्वर्ती विभिन्न साधको व सिद्धों के उर्ध्वस्तरीय अंतः प्रज्ञात्मक अनुभवों एवं रहस्यात्मक वर्णनों से प्रायः इन प्रतीकात्मक प्राचीन साक्ष्यों की पुष्टि ही होती हैं। वस्तुस्थिति तो यह है कि यह धरती आध्यात्मिक प्रकृति के शाश्वत सत्यों के सैद्धांतिक व आनुभविक दोनों ही पक्षों से कभी भी रिक्त नहीं रही हैं। आज के इस वैज्ञानिक युग में भी जो भौतिकता के प्रति रूझान से अनुप्रमाणित हैं। आध्यत्मिक प्रवणता एवं सामर्थ्य से सम्पन्न सिद्ध पुरूषों का अभाव असंभव हैं। कुछ मानव सत्य को स्वयं जीते हैं। तथा अन्य मनुष्यों के लिए भी संप्रेरक बनते हैं। कुछ स्वयं सत्य स्वरूप हो जाते है, तथा कुछ ऐसे भी है जो सत्य की ओर उन्मुखता मात्र से सम्पन्न होते हैं। प्रस्तुत शोधपत्र से संबंद्ध सम्प्रेरक सम्वर्ग इसी बिन्दु से संयुक्त हैं। भक्ति आध्यत्मिक प्रगति के मूल रूप में विवेचित किये जाने योग्य विषय हैं।

सनातन सत्य के रूप में तो भक्ति तत्व की प्रतिष्ठा है ही, मुख्य विवेच्य विषय यह है कि भागवत् पुराण के अनुसार मनुष्य के सर्वोत्कृष्ट श्रेयष्कर उपाय भक्ति ही हैं। भागवत के साधन मार्गो के प्रति आलोचको के दो मत नहीं हो सकते, भागवत् पुराण की रचना का कारण भी यही हैं। भक्ति की महिमा को प्रकाशित करना।भागवत् पुराण भक्तिशास्त्र का एक विशाल विश्व कोष माना जाता हैं। जिसमें भक्तितत्व का प्रेम के सिद्धांत का बड़ा ही मार्मिक विवेचन प्रस्तुत किया गया हैं। दुःखों की निवृत्ति ही मोक्ष हैं। मनुष्य स्वाभाविक रूप से आनंद प्राप्त करने का भरसक प्रयास करता हैं। उसकी सुखी अन्वेषण की प्रवृत्ति सहज स्वाभाविक हैं। किन्तु वास्तविक आनंद तो वही है जो नित्य है, सत्य हैं। प्रस्तुत शोधपत्र में भक्ति तत्व के विषय में उल्लेख किया गया हैं।

मनुष्य के परम् कल्याण की प्राप्ति के लिए भक्ति के अतिरिक्त और कोई सुगम उपाय नहीं हैं। सम्पूर्ण भागवत् पुराण में सभी जगह भक्ति की महिमा का ही विशद वर्णन आख्यानों के माध्यम से प्राप्त होता है। भक्ति ही मनुष्य के लिए श्रेयस्कर साधन हैं। जो व्यक्ति भक्ति को त्याग कर ज्ञान प्राप्त करने का प्रयत्न करते है, उनको केवल दुःख ही प्राप्त होता हैं।

श्रेयः श्रुति भक्तिमुदस्यते ते विभो,
क्लिष्यन्ति ये केवलबोधलब्धये।
तेषामसौ क्लेषल एव शिष्यते,
नान्यद्यथा स्थूलतुषावधातिनाम्।। 1

ज्ञान को मोक्ष प्राप्ति का साधन माना गया है किन्तु वह भी बिना भक्ति के शोभित नहीं होता हैं। इसी प्रकार से कर्म चाहे निष्काम भाव से ही क्यों न किया गया हो जब तक भगवान को अर्पित न किया जाए, तब तक शोभित नहीं होता हैं।

नैष्कर्म्यमप्यच्युतभाववर्जितं,
न शोभतेज्ञानमलं निरंजनम्।
कुतःपुनः शाष्वदभद्रमीष्वरे,
न चार्पितं कर्म यदप्यकारणम्।। 2

इसके विपरीत सकाम भाव से या निष्काम भाव से जिस प्रकार भी हो भगवद् भक्तों को तीव्र भक्ति–योग द्वारा भगवान् की आराधना करनी चाहिए।

अकामो सर्वकामो वा मोक्षकाम उदारधीः।
तीव्रेण भक्तियोगेन यज्ञेत पुरूषं परम्।। 3

श्रुति विहित कर्मों से मनुष्य के लिए मोक्ष–प्राप्ति सम्भव नहीं हैं। कर्म चाहे लौकिक हो अथवा वैदिक, उनसे किसी प्रकार मोक्ष की प्राप्ति संभव नहीं हैं। दोनों प्रकार के कर्मों से केवल सांसारिक सुख की ही प्राप्ति होती है।

अथ च तस्मादुभयथापि हि कर्मास्मिन्नात्मानः संसारावपनं उदाहरन्ति। 4

जन्म, वेद विहित कर्म एवं देवतुल्य होने से क्या लाभ हैं, देवतुल्य दीर्घायु प्राप्त कर लेने से भी क्या लाभ हैं, इसी प्रकार श्रुति, तप, चित्तवृत्ति वाली वाणी, तीक्ष्ण बुद्धि, इन्द्रिय और बल का भी क्या लाभ हैं, योग से, सांख्य से, सन्यास से, स्वाध्याय से और भी अन्य कल्याण के साधनों से क्या लाभ है, जिनके द्वारा आत्मसाक्षात्कार कराने वाले भगवान् हरि की प्राप्ति नहीं होती है।

किं जन्मभिस्त्रिभिवेह शौक्लसावित्रयाज्ञिकैः।
कर्मभिर्वात्रयीप्रोक्तैः पुंसोऽपि बिबुधायुषा।।
श्रुतेन तपसा वा किं वचोभिष्चित्रत्तिभिः।
बुद्ध्या वा किं निपुणया बलेनेन्द्रियराधसा।।
किं वा योगेन सांख्येन न्यासस्वाध्याययोरपि।
किं वा श्रेयाभिरन्यैष्च न यत्रात्मप्रदो हरिः।। 5

श्रीमद्भागवत भगवान का वाङ्गमय है, पंचमवेद के रूप में प्रसिद्ध श्रीमद्भागवत समस्त वेदों और उपनिषदों का सार है। व्यक्ति को शांति एवं समाज को क्रांति देने वाला, रस सिंधु, विशुद्ध प्रेम शास्त्र एवं दिव्य भक्तिग्रंथ हैं। यह ज्ञान भक्ति वैराग्य का विशाल समुद्र है। मनुष्यों में परस्पर प्रेम और प्राणीमात्र के प्रति दया का भाव स्थापित करने के लिये इससे बढ़कर कोई साधन नहीं है योग और तप के बिना ही श्री भगवान से मिलने का कोई साधन है, तो वह है – श्रीमद्भागवत शास्त्र।
भक्ति का लक्षण देते हुए भागवत् पुराण में कहा गया है कि जिस प्रकार गंगा का प्रवाह निरन्तर समुद्र की ओर रहता है, उसी प्रकार भगवान के गुणों के श्रवण द्वारा मन की गति भगवान की ओर हो जाना ही भक्तियोग हैं।

मद्गुणश्रुतिमात्रेण मयि सर्वगुहाषये।
मनोगतिरविच्छिन्ना यथा गंगाम्भसोऽम्बुधौ।।
लक्षणं भक्ति योगस्य निर्गुणस्य ह्युदाहृतः।। 6

भक्ति रसायन के प्रणेता श्री मधुसूदन सरस्वतीजी भी भक्ति के संबंध में यही कहते है कि भगवद् धर्म के द्वारा भगवान के विषय में निरंतरता को प्राप्त हुई चित्त की वृत्ति ही भक्ति हैं।

द्रुतस्य भगवद्धर्मदि धारावाहिकतां गता।
सर्वेषे मनसो वृत्तिर्भक्तिरित्यभिधीयते।। 7।।

वास्तव में वहीं जन्म है, वही कर्म हैं, वही आयु हैं, वही मन हैं और वही वाणी हैं जिसके द्वारा विश्वात्मा परमेश्वर कृष्ण का सेवन किया जाता हैं।
धर्म का यदि भली–भांति अनुष्ठान करने पर भी भगवान् की कथाओं में प्रेम–भाव जाग्रत नहीं होता हैं तो वह धर्म केवल श्रम ही हैं। प्रत्येक मनुष्य का अपने–अपने वर्ण एवं आश्रमानुसार धर्म विहित है, लेकिन उस धर्म की सफलता इसी में निहित है कि उससे भगवान् संतुष्ट हो। धर्म के संबंध में प्रस्तुत भागवत् पुराण की यह मान्यता उसकी अपनी मौलिक मान्यता हैं। श्रीमद्भागवत अलौकिक ग्रंथ हैं। इसमें वर्णाश्रमधर्म, मानवधर्म, कर्मयोग, अष्टाङयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग आदि भगवत्प्राप्तिके सभी साधनों का बड़ा विशद वर्णन हैं। परन्तु ध्यान से देखा जाए तो इसमें भगवान् की भक्ति का ही विशेष रूप से निरूपण किया गया हैं। साधन और साध्य दोंनो प्रकार की भक्ति का वर्णन हैं। ग्रंथ का आदि, मध्य और अन्त भक्ति से ही ओतप्रोत हैं।
'मनुष्यों का सबसे उत्तम धर्म–'परमधर्म' वहीं है, जिससे श्रीहरि में निष्काम और अव्यभिचारिणी भक्ति हो। भक्ति से ही हृदय आनन्दस्वरूप भगवान् को प्राप्त करके कृतकृत्य होता हैं।'
इसी प्रकार 12वें स्कन्ध के अन्त में श्री सूतजी कहते हैं–

भवे भवे यथा भक्तिः पादयोस्तत्व जायते।
तथा कुरूष्व देवेश नाथस्त्वं नो यतः प्रभो।।
नामसंकीर्तनं यस्य सर्वपापप्रणाशनम्।
प्रमाणो दुःखशमनस्तं नमामि हरिं परम्।। 8

'हे देवदेव! हे प्रभो! आप ही हमारे स्वामी हैं। ऐसी कृपा कीजिए, जिससे जन्म–जन्म से आपके चरणकमलों में हमारी भक्ति बनी रहें। जिनका नाम–संकीर्तन सारे पापों का नाश करने वाला हैं। और जिन्हें किया हुआ प्रणाम समस्त दुःखों को शान्त कर देता हैं, उस परमेश्वर श्रीहरि को मैं नमस्कार करता हूँ।
भक्ति की पावन महिमा का बखान करते हुए स्वयं परमात्मा श्रीकृष्ण उद्धव जी से कहते हैं–

न साधयति मां योगो न सांख्यं धर्म उद्धव।
न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो यथा भक्तिर्ममोर्जिता।।
भक्त्याहमेकया ग्राह्यः श्रद्धयाऽऽत्मा प्रियः सताम्।
भक्तिः पुनाति मन्निष्ठा श्वपाकानपि सम्भवात्।।
धर्मः सत्यदयोपेतो विद्या वा तपसान्विता।
मद्भक्म्यापेतमात्मानं न सम्यक् प्रपुनाति हि।। 9

'मेरी अटल भक्ति जिस प्रकार मुझको सहज ही प्राप्त करा सकती है उस प्रकार न तो योग, न ज्ञान, न धर्म, न वेदों का स्वाध्याय, न तप और न दान ही करा सकता हैं। मै संतो का प्रिय आत्मा हूँ। एकमात्र श्रद्धासम्पन्न भक्ति से ही मेरी प्राप्ति सुलभ हैं। दूसरों की तो बात ही क्या, कुत्ते का मांस खानेवाले चाण्डालादि को दया से युक्त धर्म हो तथा तपस्यासे युक्त विद्या भी हो परन्तु मेरी भक्ति न हो, तो वे धर्म और विद्या उनके अन्तः करण को पूर्ण रूप से पवित्र नहीं हो जाता, हृदय द्रवित नहीं हो उठता, आनन्द के आंसुओं की झड़ी नहीं लग जाती, तब तक मेरी ऐसी भक्ति के बिना अन्तःकरण कैसे शुद्ध हो सकता हैं। भगवान श्री कृष्ण भक्ति की दिव्यता को मंडित करते हुए ज्ञान स्वरूप उद्धव से आगे कहते हैं–

कथं विना रोमहर्षं द्रवता चेतसा विना।
विनाऽऽनन्दाश्रुकलया शुध्येद् भक्त्या विनाऽऽशयः।।
वाग् गद्दा द्रवते यस्य चित्तं
रूदत्यभीक्ष्णं हसति क्वचिच्च।
विलज्ज उद्यायति नृत्यते च
मद्भक्तियुक्तो भुवनं पुनाति।।
यथाग्निना हेम मलं जहाति
ध्मातं पुनः स्वं भजते च रूपम् ।
आत्मा च कर्मानुशयं विधूय
मद्भक्तियोगेन भजत्यथो माम्।। 10

भक्ति के प्रवाह में जिसकी वाणी गद्गद हो गई है, चित्त द्रवित हो गया हैं, जो कभी रोता हैं, कभी हंसता है, कभी संकोच छोड़कर ऊँची आवाज से गाने लगता है और कभी नाच उठता है–ऐसा मेरा भक्त स्वयं पवित्र हो, इसमें तो कहना ही क्या वह तीनों लोंको को पवित्र कर देता हैं। जिस प्रकार अग्नि से तपाये जानेपर सोना मैल को त्याग कर अपने निर्मल स्वरूप को प्राप्त हो जाता है, उसी

प्रकार मेरे भक्ति योग से आत्मा भी कर्मवासना के बंधन से मुक्त हो जाता है।

एक बार श्रीशुकदेव जी महाराज घुमते–घमते वेदों के कल्प–वृक्ष के नीचे पहुँच गए तो वेदों ने कहा कि महात्मा जी, आपको क्या चाहिए? शुकदेव जी ने कहा कि हमको तो कुछ नहीं चाहिए। हम तो 'स्वप्रकाशे चिदात्मनि ब्रम्हणि सुखमास्महे'–स्वप्रकाश चिदात्मा ब्रम्ह में आनन्द से बैठे हुए हैं। फिर हमें क्या चाहिए? कल्प वृक्ष ने कहा कि तुम मेरे नीचे आये हो, फिर मैं तुम्हारे जैसे ब्रम्हरूप अतिथि को खाली हाथ कैसे जाने दूं? लो, हमारा जो सबसे उत्तम स्वारसिक फल है–'निगमकल्पतंरोर्गलितं फलं' वह मैं तुम्हें देता हूँ। यह तुम्होरे मुख के संयोग से और भी मीठा हो जाएगा।

इसीलिए व्यास जी कहते हैं कि –भागवत रूपी भक्तिरस को पीकर संसार के रसिक जो इसी समय सुख चाहते है, उनको निमन्त्रण है और परलोक में सुख चाहते है उन भक्तो को भी निमन्त्रण हैं। वे आयें और इसी जन्म में सुख प्राप्त करें।

ध्यान दें, धर्म अदृष्ट फल देता हैं, लेकिन भक्ति दृष्टादृष्ट फल देती हैं। इस लोक में भक्ति करने का सुख, भगवान् को याद करने का सुख, पूजा करने का सुख, नाम लेने का सुख, स्मरण करने का सुख–इस प्रकार भक्ति तत्काल सुख देती है और इससे अन्तःकरण का ऐसा निर्माण होता है कि परलोक में भी सुख मिलता हैं। ज्ञान तत्काल अभिमान की निवृत्ति कर देता हैं और भक्ति लोक – परलोक में सर्वत्र साथ जाती हैं।

इसलिए एक बार अज्ञान की निवृत्ति हो जाने पर ज्ञान का भी वर्णन आता हैं 'ज्ञानं च मयि संन्यस्तं।' यह ज्ञान परमात्मा के स्वरूप से अलग नहीं है, इसकों अलग रखने की जरूरत भी नहीं हैं। परन्तु भक्ति ऐसी हैं, जो परमात्मा के मिलने से पहले भी होती हैं, परमात्मा से मिलते समय भी होती हैं, परमात्मा से मिलने के बाद भी होती हैं। जीवन को रसमय बनाने के लिए ही भगवान् की भक्ति हैं। इस भक्ति का वर्णन श्रीमद्भागवत में लौकिक कल्याण की दृष्टि से भी हैं पारलौकिक कल्याण क दृष्टि से भी है और तुरन्त भगवत्तत्त्व के साक्षात्कारके लिए भी हैं। इसीलिए श्रीमद्भगवतगीता में स्वयं भगवान श्री कृष्ण अर्जुन से कहते है –

भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्वेन प्रवेष्टुं च परन्तप।। 11

हे परन्तप अर्जुन! मुझे प्रत्यक्ष देखना, तत्व से जानना और मुझमें समा जाना यदि यह संभव है तो वह परम् तत्व मेरी अनन्य भक्ति ही हैं।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत श्रवण करते समय ही आपके हृदय में आकर भक्ति बैठ जाएगी और जब भक्ति बैठ जाएगी तब पिछली बातों को याद कर–करके आप शोकग्रस्त नहीं होंगे। अगली बातों की कल्पना कर–करके आप भयभीत नहीं होंगे और वर्तमान में जिनसे मोह है वह सब छूट जाएगा। इसलिए अन्तःकरण को तत्काल शुद्ध कर भक्तिधारण करने के लिए श्रीमद्भागवत से बढ़कर, श्रीमद्भागवत के सिवाय दूसरी कोई वस्तु नहीं हैं।

अन्त में सूत जी ने शौनकादि ऋषियों को बताया कि श्रीमद्भागवत महापुराण सम्पूर्ण पुराणों का तिलक हैं, वैष्णवों का परम धन हैं और इसमें ज्ञान–भक्ति–वैराग्य सहित नैष्कर्म्यका आविष्कार किया गया हैं। इस अलौकिक ग्रंथ का जो श्रवण करता है हैं, पठन करता है, विचार करता हैं, उसे भगवान् की भक्ति प्राप्त हो जाती है और वह मुक्त हो जाता हैं।

श्रीमद्भागवत को कोई व्याकरणादि विद्या द्वारा नहीं समझ सकता। य भगवान् की भक्ति से ही समझ में आता है–

यदि कोई चाहे कि मैं विद्या से या अभ्यास से श्रीमद्भागवत को ग्रहण कर लूंगा तो यह सम्भव नहीं हैं। श्रीमद्भागवत तो केवल भक्त्यैकग्राह्य है–एकमात्र भक्ति के द्वारा ही इसका ग्रहण हो सकता हैं।

इस प्रकार हम निष्कर्षतः कह सकते है कि आनंद प्राप्ति के लिए समस्त प्राणी उत्पन्न होते हैं। और आनंद को धारण करते हैं। साथ ही अंत में आनंद में ही उनका अभिनिवेश होता हैं।आनंद प्राप्ति का एक मात्र साधन धर्म हैं। हमारी सनातन परंपरा में तो धर्म से ही सुख प्राप्ति संभव हैं। भागवत पुराण के अनुसार मनुष्य का वही धर्म है जिसमें भक्ति हो। भक्ति से ही मनुष्य को परमानंद की प्राप्ति होती है।

संदर्भ सूची

1. महर्षि वेदव्यास (2010) श्री मद्भागवत महापुराण, गीता प्रेस प्रकाशन गोरखपुर–10/14/4
2. महर्षि वेदव्यास (2010) श्री मद्भागवत महापुराण, गीता प्रेस प्रकाशन गोरखपुर–1/5/12
3. महर्षि वेदव्यास (2010) श्री मद्भागवत महापुराण, गीता प्रेस प्रकाशन गोरखपुर–2/3/10
4. महर्षि वेदव्यास (2010) श्री मद्भागवत महापुराण, गीता प्रेस प्रकाशन गोरखपुर–5/14/23
5. महर्षि वेदव्यास (2010) श्री मद्भागवत महापुराण, गीता प्रेस प्रकाशन गोरखपुर–4/31/10–12
6. महर्षि वेदव्यास (2010) श्री मद्भागवत महापुराण, गीता प्रेस प्रकाशन गोरखपुर–3/29/11–12
7. श्री मधुसूदन सरस्वती (2008) भक्तिरसायन, सत्साहित्य प्रकाशन मुम्बई – 1/3
8. महर्षि वेदव्यास (2010) श्री मद्भागवत महापुराण गीता प्रेस प्रकाशन गोरखपुर–12/13/22–23
9. महर्षि वेदव्यास (2010) श्री मद्भागवत महापुराण गीता प्रेस प्रकाशन गोरखपुर–11/14/20–22
10. महर्षि वेदव्यास (2010) श्री मद्भागवत महापुराण गीता प्रेस प्रकाशन गोरखपुर–11/14/23–25
11. भगवान श्री कृष्ण (2004) श्री मद्भगवद् गीता प्रेस प्रकाशन गोरखपुर – 11/54